RNI No. 26281/74 रजि. नं. पी.बी./जे.एल-011/2015-17

ओ३म्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख पत्र

वर्षः 76, अंक : 12 एक प्रति 2 : रुपये

कुल पृष्ठ : 8

रविवार 23 जून, 2019

विक्रमी सम्वत् 2076, सृष्टि सम्वत् 1960853120

दयानन्दाब्द : 195 वार्षिक शुल्क : 100 रुपये

आजीवन शुल्क : 1000 रुपये

दूरभाष : 0181-2292926, 5062726

E-mail: apspunjab2010@gmail.com,

www.aryapratinidhisabha.org

वर्ष-76, अंक : 12, 20-23 जून 2019 तदनुसार 9 आषाढ़, सम्वत् 2076 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

वृद्धों की सेवा

ले०-स्वामी वेदानन्द (दयानन्द) तीर्थ

त्वं वृध्र इन्द्र पूर्व्यो भूर्वरिवस्यन्नशने काव्याय।
परा नववास्त्वमनुदेयं महे पित्रे ददाथ स्वं नपातम्।।

-ऋ० ६।२०।११

शब्दार्थ-हे **इन्द्र** = ऐश्वर्यसम्पन्न **त्वम्** = तू **वृधः** = बूढ़ों की **वरिवस्यन्** = सेवा करने वाला और **पूर्व्यः** = अपने पूर्वजों का हितकारी **भूः** = हो, और **उशने काव्याय** = चाहने योग्य ज्ञानी के लिए तथा **महे** = पूज्य **पित्रे** = पिता के लिए **नववास्त्वम्** = नया बसने योग्य घर आदि सामान तथा नपातम् = अखुट **स्वम्** = धन तथा **अनुदेयम्** = बाद में देने योग्य, दक्षिणादि **परादद ाथ** = दिया कर।

व्याख्या-ऐश्वर्य्य प्राप्त करके मनुष्य प्रायः प्रमादी हो जाता है और अपना कर्त्तव्य भूल जाता है। धन की ऐंठ में आकर माता-पिता आदि तथा ज्ञानियों की उपेक्षा=अनादर करने लगता है। वेद सावधान करता हुआ वृद्ध आदि की सेवा का आदेश करता है।

युवक की अपेक्षा वयोवृद्धों को संसार का अनुभव अधिक होता है। उन्होंने अपने जीवन में अनेक ठोकरें खाई हैं, नाना उत्थान और पतन देखे हैं। विषम परिस्थिति में पड़कर उसका कैसे विस्तार हुआ, इत्यादि का जो ज्ञान उन्हें है, युवकों में प्रायः उसकी सम्भावना न्यून होती है। दूसरों के अनुभव से लाभ उठाने वाला मनुष्य बहुत-से दुःखों से बच जाता है, अतः वेद वृद्धों-ज्ञानवृद्धों, धर्मवृद्धों, वयोवृद्धों आदि की सेवा का विधान करता है।

कोई भी मनुष्य इस बात को कहने का साहस नहीं कर सकता है कि वह सब-कुछ जानता है। सब-कुछ केवल परमेश्वर जानता है। सब-कुछ न जानने से अज्ञात विषयों में सदा सन्देह बना रह सकता है। सन्देह होने से कर्त्तव्य पूरा करने में बाधा आती है, अतः बुद्धिमान् सदा ज्ञानियों की परिचर्य्या करते रहते हैं। मनुष्य को सदा अपना ज्ञान बढ़ाते रहना चाहिए। किसी ने कहा भी है-'**वयसा वर्द्धयेद्विद्याम्**' = आयु के साथ विद्या को भी बढ़ाए। यह तभी हो सकता है जबकि विद्यावृद्धों की सेवा की जाए। यही बात वेद ने कही है-'**वरिवस्यन्नुशने काव्याय**' = कमनीय, क्रान्तदर्शी विद्वान् की सेवा कर।

माता-पिता सन्तान के लालन-पालन, भरण-पोषण, संवर्द्धन में महान् कष्ट का अनुभव करते हैं। उसकी निष्कृति किसी भी प्रकार नहीं हो सकती, अतः पुत्र माता-पिता आदि पूज्यों को स्थान, वस्त्र, अन्न-धन आदि जीवनोपयोगी पदार्थ सदा देता रहे। वैदिक धर्म में माता-पिता की सेवा नित्य कर्त्तव्य है, इसके लिए एक 'पितृयज्ञ' नाम के महायज्ञ का विधान है। हमारे सभी शास्त्र वृद्धों की सेवा का आदेश करते हैं। मनुजी कहते हैं-**अभिवादनशीलस्य 'नित्यं वृद्धोपसेविनः। चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशोबलम्[२।१२१]'** = वृद्धों की नित्य सेवा करने से, आयु, विद्या, यश और बल ये चार बढ़ते हैं। **(स्वाध्याय संदोह से साभार)**

अद्भ्यः सम्भृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मणः समवर्त्तताग्रे।
तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे।।

-यजु० ३१.१७

भावार्थ-सम्पूर्ण संसार का जनक जो परमात्मा, प्रकृति और उसके कार्य सूक्ष्म तथा स्थूल भूतों से, सब जगत् को और उसके शरीरों के रूपों को बनाता है उस ईश्वर का ज्ञान और उसकी वैदिक आज्ञा का पालन ही देवत्व है।

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।।

-यजु० ३१.१८

भावार्थ-मुमुक्षु पुरुष को महानुभाव विद्वान् उपदेश करता है कि मुमुक्षो! मैं उस परमात्मा को जानता हूँ। जो सर्वज्ञतादि गुणयुक्त-सूर्य के समान प्रकाशस्वरूप, अज्ञान अन्धकार से परे वर्तमान, सर्वत्र पूर्ण है। इसी को जानकर बारम्बार जन्म मरण से रहित हुआ, मुक्तिधाम को प्राप्त होकर, सदा आनन्द में रहता है। इस प्रभु के ज्ञान और भक्ति के बिना, मुक्तिधाम के लिए दूसरा कोई मार्ग नहीं है। इसलिए बहिर्मुखता के हेतु घण्टे घड़ियाल बजाना, अवैदिक चिन्ह तिलक छाप आदि लगाना, कान फाड़कर उनमें मुद्रा धारण करना कराना, सब व्यर्थ और वेद-विरुद्ध है। ये सब स्वार्थी, नास्तिक, वेदविरोधियों के चलाये हुए हैं। इन पाखण्ड़ों से मुक्ति की आशा करना भी महामूर्खता है।

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते।
तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीरास्तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा।।

-यजु० ३१.१९

भावार्थ-सर्वपालक परमेश्वर, आप उत्पन्न न होता हुआ अपने सामर्थ्य से जगत् को उत्पन्न कर और उसमें प्रविष्ट होके सर्वत्र विचरता है, अर्थात् सर्वत्र विराजमान है। उस जगदीश्वर के स्वरूप को विवेकी महात्मा लोग ही जानते हैं। उस सर्वाधार परमात्मा के आश्रित ही सब लोक स्थित हो रहे हैं। ऐसे सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् सर्वनियन्ता, अन्तर्यामी प्रभु को जानकर ही हम सुखी हो सकते हैं।

कर्त्तव्याकर्त्तव्य

ले.-शिवनारायण उपाध्याय, शास्त्री नगर दादाबाड़ी, कोटा

संसार में कर्म तो प्राणी मात्र को करना ही पड़ता है! कुछ तो स्वाभाविक कर्म हैं जो अपने आप होते रहते हैं जैसे श्वास लेना और छोड़ना, शरीर में रक्त परिभ्रमण का होना, भोजन संस्थान में भोजन का पचना, मस्तिष्क में विचारना आदि और दूसरे एच्छिक कर्म हैं जिनका करना या न करना सामान्य रूप से प्राणियों के हाथ में है परन्तु उन्हें भी करना ही होता है। एच्छिक कर्मों को दो भागों में विभाजित किया जाता है। सुकर्म और दुष्कर्म। फिर इन कर्मों के साथ इनके फल भी लगे हुए हैं, अच्छे सुकर्म का अच्छा फल और दुष्कर्म का बुरा फल। मनुष्य विवेकशील प्राणी है अत: उससे आशा की जाती है कि वह श्रेष्ठ कर्म ही करें। एमेन्युअल कान्ट तो कर्त्तव्य कर्म को सबसे श्रेष्ठ मानते थे।

मनुष्य को जिन कार्यों का निष्पादन करना आवश्यक है उन्हें उसके कर्त्तव्य कहा जाता है और जिन कार्यों को नहीं करना है उसे उसके लिए अकर्त्तव्य कहा जाता है। शास्त्रों में कर्त्तव्य बोध के लिए बहुत कुछ कहा गया है। हम इस लेख में दक्ष स्मृति के आधार पर हमें क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए इस पर विचार करेंगे। वैसे सभी स्मृति ग्रन्थों में इस विषय पर पर्याप्त चिंतन हुआ है पहले हमें क्या करना चाहिए? इस पर दक्ष स्मृति के आधार पर विचार करते हैं। अतिथि के आने पर हमारा व्यवहार कैसा हो? इस पर कहते हैं-

मनश्च क्षुर्मुखं वाचं सौम्यं दधाच्चतुष्टयम्।

अभ्युत्थानमिहा गच्छ पृच्छालाप प्रियान्वित:।।

उपासनामनुव्रज्या कार्याण्येतानि यत्नत:।।

दक्ष स्मृति 3/4.5

नौ बातें मंगलकारक और करणीय है। अतिथि सेवा मुख्य धर्म है। घर पर अतिथि आ जाये तो गृहस्थ को क्या करना चाहिए। वह इन दो श्लोकों में बताया गया है। (1) अतिथि के आगमन पर हमारा मन सौम्य होना चाहिए, मन में प्रसन्नता होनी चाहिए। (2) हमारी दृष्टि में भी सौम्यता झलकनी चाहिए। (3) हमारे मुख पर सौम्यता दर्शित होनी चाहिए। मुख की आकृति से ही तो यह जाना जाता है कि व्यक्ति प्रसन्नचित्त है। (4) अतिथि का वाणी की सौम्यता के साथ स्वागत करना चाहिए। (5) अतिथि के सत्कार में तुरन्त उठकर आगे बढ़कर उसे नमस्ते करना चाहिए, आयु वृद्ध और ज्ञान वृद्ध हो तो उसके चरणों का भी स्पर्श करना चाहिए। (6) अतिथि से उनकी कुशलता पूछना चाहिए, कहां से आये है रास्तें में कोई कठिनाई तो नहीं आई यह जानने के लिए उनसे प्रश्न करना चाहिए। (7) फिर बैठकर उनसे स्नेह पूर्वक वार्तालाप करना चाहिए। (8) अतिथि के समीप बैठकर उन्हें जल पान कराना चाहिए। यदि वे थके हुए हो तो उन्हें आराम करने के लिए कहना चाहिए। (9) जब वे जाने लगें तो उनके पीछे-पीछे चलकर कुछ दूर तक जाना चाहिए।

(2) उपर्युक्त के साथ नौ बातें और भी हैं जो अतिथि के आने पर करनी हैं-

ईशद्दानानि चान्यानि भूमिराप-स्तृणानि च।

पाद शौचं तथाभ्यङ्गमाश्रय: शयनं तथा।।

किंचिच्चान्नं यथा शक्ति नाश्यानश्नन् गृहे वसेत्।

मृज्जलं चार्थिने देवमेतान्यपि सदा गृहे।। दक्ष 3/6-7

पदार्थ-(1) अतिथि को स्थान देना अर्थात् अतिथि को किसी निश्चित स्थान पर ठहराना, (2) अतिथि को पहले हाथ-मुंह धोने और फिर पीने के लिए जल देना, (3) उन्हें उच्च आसन पर बैठाना तथा स्वयं उनसे नीचे आसन पर बैठना, (4) अतिथि के पैर स्वयं ही धुलाना, (5) आवश्यक होने पर साबुन, तेल आदि देना, (6) उन्हें उचित स्थान देना, (7) आराम करने के लिए पलंग आदि की व्यवस्था करना, (8) यथा शक्ति भोजन उपलब्ध कराना, (9) मिट्टी (वर्तमान में साबुन) और जल देना। अतिथि को कभी भी भूखा नहीं सोने देना। उसके इच्छानुसार भोजन देना श्रेष्ठ कर्म है।

(3) हमें प्रतिदिन नियमित रूप से क्या करना चाहिए? इस विषय में दक्ष स्मृति हमें खुलकर बताती है।

सन्ध्या स्नानं जपो होम: स्वाध्यायो देवतार्चनम्।

वैश्वदेवं तथातिथ्यमुद्धतं चापि शक्तित:।

पितृ देवमनुष्याणां दीनानाथतपस्विनाम्।

माता पितृगुरूणां च संविभागोयथार्हत:।।

दक्ष. 3/8-9

हमें प्रतिदिन निम्न नौ कार्य को करना ही चाहिए।

(1) प्रात: काल सन्ध्या वन्दन (2) स्नान (3) जप (4) हवन या देव यज्ञ (5) स्वाध्याय (6) देव पूजन (7) बलिवैश्व देवयज्ञ (8) अतिथि सेवा (9) यथा शक्ति देव-पितृ-मनुष्य, दीन, अनाथ, तपस्वी, माता-पिता एवं गुरू आदि को यथा विधि यथा योग्य भोजन तथा जलांजलि से सन्तुष्ट करना।

(4) फिर नौ निन्दित कर्म बताए गए हैं जो सर्वथा त्याज्य हैं। सद् गृहस्थ को इन निन्दित कार्यों से सदैव दूरी बनाई रखनी चाहिए तथा परिवार के अन्य सदस्यों को भी इनसे बचाना चाहिए।

(1) अनृतं पारदार्यं च तथा भक्ष्यस्य भक्षणम्।

अगम्यागमना पेयं हिंसा स्तेयं तथैव च।।

अश्रौतकर्माचरणं मित्रधर्म बहिष्कृतम्।

नवैतानि विकर्माणि तानि सर्वाणि वर्जयेत।।

दक्ष 3 (10-12)

ये नौ निन्दित कर्म इस प्रकार हैं-(1) असत्य भाषण (2) परदारासेवन (3) अभक्ष्य भक्षण अर्थात् जो भोजन नहीं खाता है जैसे मांस-मछली आदि उसे खा लेना (4) अगम्यागमन जिन सम्बन्धों में विवाह होना वर्जित है उनमें विवाह कर लेना (5) अपेय-पान अर्थात् शराब आदि पीना (6) हिंसा करना (7) चोरी करना अर्थात् किसी वस्तु को उसके स्वामी की आज्ञा के बिना ले लेना, उसका उपयोग कर लेना (8) वेद बाह्य कर्मों का आचरण करना तथा (9) मैत्र-धर्म का निर्वाह न करना। (5) नौ परम गोपनीय बाते हैं इन्हें कभी भी प्रकट नहीं करना चाहिए-

आयुर्वित्तं गृहच्छिद्रं मन्त्रमैथुन भेषजम्।

तपो दानावमानौ च नव गोप्यानि यत्नत:।।

दक्ष. स्मृति 3/12-13

(1) अपनी आयु (2) धन (3) घर का कोई भेद (4) मंत्र (5) मैथुन (6) औषधि (7) तप (8) दान तथा (9) अपमान।

(6) अब नौ बातें ऐसी हैं जिनको प्रकाश में लाना चाहिए। इन नौ बातों को छिपा कर नहीं रखना चाहिए।

प्रायोग्यमृणशुद्धिश्च दानाध्ययनविक्रय:।

कन्यादानं वृषोत्सर्गो रह: पापमकुत्सितम्।।

दक्ष. स्मृति 3/13-14

(1) ऋण लेने की बात (2) ऋण शुद्धि उऋण होने की बात (3) दान में मिली वस्तु अथवा वस्तु के दान की बात (4) अध्ययन (5) विक्रय की गई कोई वस्तु (6) कन्या दान (7) वृषोत्सर्ग (8) एकान्त में किया गया पाप (9) अनिन्दित कर्म।

(7) अब नौ अक्षय सफल बातें। नौ प्रकार के मनुष्य को जो कुछ भी दिया जाता है वह सफल और अक्षय हो जाता है।

माता पित्रोर्गुरौमित्रे विनीते चोपकारिणि।

दीनानाथ विशिष्टेभ्यो दत्तं तु सफलं भवेत।। दक्ष स्मृति 3/15

(1) माता (2) पिता (3) गुरू (4) मित्र (5) विनयी (6) उपकार करने वाला (7) दीन (8) अनाथ तथा (9) सज्जन या साधु। वास्तव में उपर्युक्त ये सभी व्यक्ति सहायता के पात्र हैं। जब कभी ये हमसे कोई याचना करे तो हमें तुरन्त उसकी पूर्ति कर देनी चाहिए। हमें इसका प्रचार भी नहीं करना चाहिए। देवव्रत ने किस प्रकार सहजता से आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत लेकर अपने पिता शान्तनु की इच्छा की पूर्ति की और भगवान् श्रीकृष्ण ने किस प्रकार अपने मित्र सुदामा को ऐश्वर्य प्रदान कर दिया और सुदामा को इसकी खबर भी नहीं लगने दी।

(8) नौ निष्फल बातें-नौ प्रकार के व्यक्ति ऐसे हैं जिन्हें कुछ भी दिया जाए तो वह निष्फल हो जाता है-

धूर्ते वन्दिनि मन्दे च कुवैद्ये कितवे शठे।

चाटु चारण चीरेभ्य दत्तं भवति निष्फलम्।। दक्ष स्मृति 3/16

(1) धूर्त व्यक्ति (2) बन्दी (3) मन्द बुद्धि (मूर्ख) (4) अयोग्य वैद्य (5) कितव या जुआरी (6) शठ

(शेष पृष्ठ 6 पर)

सम्पादकीय

प्राणायाम का महत्व और उसके लाभ

महर्षि पतञ्जलि ने अपने योगदर्शन में प्रभु की प्राप्ति के लिए योग के आठ अंग बताए हैं, जिन पर आचरण करने से मनुष्य न केवल प्रभुप्राप्ति तथा आत्म साक्षात् द्वारा मोक्ष को ही प्राप्त कर सकता है, प्रत्युत वह अपनी शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक उन्नति करता हुआ संसार में भी अपने जीवन को सुख एवं शान्तिमय बना सकता है। योग के आठ अंगों में चौथा अंग है-प्राणायाम। प्राणायाम शरीर तथा मन दोनों को शुद्ध पवित्र तथा बलवान् बनाता है। प्राणायाम की महिमा केवल योगदर्शन में ही नहीं अपितु अन्य शास्त्रों में भी प्राणायाम की महिमा का वर्णन किया गया है। ऋग्वेद में प्राणायाम के सम्बन्ध में इस प्रकार से वर्णन आता है-

द्वाविमौ वातौ वात आ सिन्धोरा परावतः।
दक्षं ते अन्य आ वातु परा अन्यो वातु यद्रपः।।

अर्थात् हमारे शरीर में दो प्रकार की प्राण और अपान नाम की वायु चल रही है। उन दोनों में से एक तो सिन्धु अर्थात् हृदय तक चलती है और दूसरी बाहर के वायुमण्डल तक चलती है। जो मनुष्य प्राणायाम के द्वारा इन दोनों प्राण और अपान शक्तियों को अपने वश में कर लेता है, वह अपान शक्ति के द्वारा तो अपने अन्दर की निर्बलता को बाहर निकाल देता है और प्राण शक्ति के द्वारा अपने अन्दर आरोग्यता, बल, उत्साह और शक्ति को भर लेता है।

प्राणायाम का उद्देश्य केवल मनुष्य को स्वस्थ, बलवान एवं चिरायु बनाना ही नहीं है, अपितु मनुष्य की मानसिक तथा आत्मिक शक्तियों का विकास करना भी है, और यही प्राणायाम का उद्देश्य है। हमारे शरीर में पांच कोश तथा आठ चक्र हैं। इन कोशों के भीतर प्रवेश करने से जहां आत्मिक शक्तियों का विकास होता है, वहां चक्रों को जागृत करने से मनुष्य की मानसिक शक्तियों का विकास होता है। ये चक्र संख्या में आठ हैं, जैसे मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, सूर्य, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञा तथा ब्रह्मरन्ध्र। मूलाधार-गुदा के पास, स्वाधिष्ठान- मूलाधार से चार अंगुल ऊपर, मणिपूरक-नाभि स्थान में, सूर्य-पेट के ऊपर रीड़ की हड्डी के दोनों ओर, अनाहत- हृदय में विशुद्धि कण्ठ में, आज्ञा चक्र- भृकुटि में, तथा ब्रह्मरन्ध्र- ललाट के ऊपर है। योग ग्रन्थों में इन चक्रों के सम्बन्ध में बहुत वर्णन किया गया है।

हमारे समस्त शरीर में ज्ञानतन्तु जाल के समान फैले हुए हैं। यही ज्ञानतन्तु हमें रूप, रस, गन्ध आदि विषयों का ज्ञान कराते हैं तथा अनेक शारीरिक और मानसिक शक्तियों के आधार हैं। ये ज्ञानतन्तु हमारे शरीर रूपी नगर में, सड़कों के समान अथवा देहरूपी राष्ट्र में रेल की लाईनों के समान फैले हुए हैं। जैसे शहर में सड़कों के अनेक केन्द्र होते हैं, जहां पर कई सड़कें आकर मिलती हैं उसी प्रकार हमारे शरीर में भी प्रत्येक विषय के ज्ञानतन्तुओं के केन्द्र हैं। जहां पर उस-उस विषय के ज्ञानतन्तु आकर मिलते हैं। उन्हीं ज्ञानतन्तुओं के केन्द्रों का नाम चक्र है। इन चक्रों में अनेक शारीरिक तथा मानसिक दैवी शक्तियां निहित हैं, जोकि इन चक्रों के जागृत करने से ही प्रकट होती हैं। उन्हीं दिव्य शक्तियों को आजकल के योगियों ने ब्रह्मा आदि देवताओं का स्वरूप दे दिया है। जिस मनुष्य का जिस विषय का चक्र जागृत होता है, उसके ज्ञानतन्तुओं के जागृत होने से उन-उन ज्ञानतन्तुओं से सम्बन्धित समस्त शारीरिक तथा मानसिक दिव्य शक्तियां भी जागृत हो जाती हैं। इन्हीं षट् चक्रों को आधुनिक साईंस वालों ने हारमोन्स के नाम से कहा है और इन मूलाधार आदि चक्रों के उन्होंने अपनी परिभाषा में निम्न नाम रखे हैं- प्रोस्टेट, ऑवेरियन, एडेनेलिन, पेनक्रियास, थाइराइड, थाइमॉस और पियूटरी ग्लैण्ड। इन ग्लैण्ड्स के आधुनिक विज्ञानवेत्ताओं ने जो-जो प्रभाव शरीर, मन और आत्मा पर बताए हैं वैसे ही प्रभाव हठयोगियों ने भी षट चक्रों की जागृति के बताए हैं।

इन सभी ज्ञानतन्तुओं के केन्द्रों अर्थात् मूलाधार आदि चक्रों को जागृत करने का मुख्य साधन प्राणायाम ही है। प्राणायाम का पूर्ण अभ्यासी जिस चक्र को जागृत करना चाहता है उसमें प्राणायाम के द्वारा प्राणों को केन्द्रित कर उस चक्र को जागृत कर लेता है। योगियों की अनेक प्रकार की शारीरिक तथा मानसिक शक्तियों के, जिन्हें कि हम सिद्धियों के नाम से पुकारते हैं, उनके विकसित होने का रहस्य भी प्राणायाम ही है।

मानसिक शक्तियों के विकास का दूसरा साधन चित्त की एकाग्रता है। जिसका जितना चित्त एकाग्र होगा, उसकी उतनी ही मानसिक शक्तियां विकसित होंगी। किन्तु चित्त या मन का सहसा एकाग्र होना बहुत कठिन है। क्योंकि भौतिक जगत में चित्त सबसे अधिक सूक्ष्म तथा चंचल वस्तु है। सूक्ष्म वस्तु का रोकना बहुत कठिन हुआ करता है। यही कारण है कि हम बिना अभ्यास के यदि चाहें तो अपने चित्त को दो-चार मिनट तक भी रोककर एकाग्र नहीं कर सकते। इन चित्तवृत्तियों के रोकने के लिए ही योग का प्रादुर्भाव हुआ है और यह भी ध्रुव सत्य है कि बिना चित्त की एकाग्रता के न तो लौकिक उन्नति ही कर सकते है और न ही पारलौकिक। जिसका जितना अधिक चित्त एकाग्र होगा, उतना उसके चित्त में अधिक बल, पराक्रम तथा नाना प्रकार की दिव्य शक्तियों का विकास होगा। जिनके द्वारा वह संसार के महान् से महान् कार्यों को भी बड़ी सुगमता से पूर्ण कर सकेगा और प्रभु भक्ति तथा आत्म चिन्तन में भी उसका मन भली प्रकार लग सकेगा। विक्षिप्त अर्थात् चंचल मन न तो किसी सांसारिक महत्त्वपूर्ण कार्य में सफलता प्राप्त कर सकता है और न ही आध्यात्मिक कार्यों में । एकाग्रचित्त जहां उस बड़ी नहर के समान है, जिसके जल के वेग में एक महान् शक्ति निहित है वहाँ चंचल मन उस नहर के नाना दिशाओं में फूटे हुए उन छोटे नालों के समान है, जिन नालों के जल के वेग में नहर के वेग की अपेक्षा शतांश भी सामर्थ्य तथा शक्ति नहीं है। अतः सांसारिक तथा आध्यात्मिक उन्नति के अभिलाषी कस यह सबसे पहला कर्त्तव्य है कि वह अपने चित्त को एकाग्र करे। चित्त को शुद्ध तथा एकाग्र करने का मुख्य तथा सरल साधन है- प्राणों को अपने वश में करना। प्राणायाम एक प्रकार का मानसिक स्नान है। जैसे शरीर को शुद्ध करने के लिए स्नान की आवश्यकता है, वैसे ही मन को शुद्ध और एकाग्र करने के लिए प्राणायाम की आवश्यकता है। प्राण और मन का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है, मानो ये दोनों एक ही पेड़ के तने से निकलने वाली दो शाखाएं हैं। यदि प्राण चंचल और अस्थिर हैं, दूसरे शब्दों में हमारे वश में नहीं है तो मन हमारे वश में कभी नहीं हो सकता। जिस प्रकार बाह्य जगत में वायु के चलने पर वृक्षादि सब पदार्थ चलने तथा हिलने लगते हैं और वायु के बन्द होने पर वे स्थिर हो जाते हैं, उसी प्रकार शरीर के अन्दर की प्राण वायु जब तक चलायमान रहती है, तब तक इन्द्रियां और मन भी चलायमान, चंचल रहते हैं। प्राणायाम के द्वारा उनके स्थिर हो जाने पर मन भी स्थिर, शांत और एकाग्र हो जाता है। इसलिए मन की चञ्चलता अर्थात् गति को रोकने के अभिलाषी को पहले प्राणों की गति को रोकना अर्थात् उसे अपने वश में करना चाहिए। प्राणों के वश में होते ही मन या चित्त स्वयं वश में हो जाता है। इसीलिए चित्त की एकाग्रता का, चित्त की दिव्य शक्तियों के विकास का प्राणायाम ही मुख्य तथा सरल साधन है। इसीलिए योगदर्शन के समाधिपाद में जहां चित्त की एकाग्रता के अनेक साधन लिखे हैं, वहां प्राणायाम को भी चित्त की एकाग्रता का मुख्य साधन बताया है। जैसा कि योगदर्शन में लिखा है- प्रच्छर्दन-विधारणभ्यां वा प्राणस्य अर्थात् प्राणों के बाहर लेने तथा अन्दर रोकने से भी चित्त एकाग्र हो जाता है। अतः चित्त को एकाग्र करने, मानसिक शक्तियों के विकास करने तथा शारीरिक स्वास्थ्य, बल तथा आरोग्यता प्राप्त करने और दीर्घायु के लाभ प्राप्त करने का यदि कोई मुख्य तथा सर्वोत्तम साधन है तो वह प्राणायाम ही है। प्राणायाम मन को शान्त, एकाग्र और बलवान् बनाता है। मन की प्रसुप्त दैवी शक्तियों को जागृत करता है। शरीर को शुद्ध पवित्र और बलवान् बनाकर उसे तेजस्वी तथा कान्तिमय बना देता है। शरीर के सब दोषों तथा मलों को प्रदीप्त अग्नि के समान जला देता है और रेचक के द्वारा शरीर के सब विकारों को बाहर फैंक देता है। प्राणायाम आदि योगाभ्यास करने से सब शारीरिक तथा मानसिक रोगों का क्षय अर्थात् नाश हो जाता है।

प्रेम भारद्वाज
संपादक एवं सभा महामन्त्री

महर्षि दयानन्द की दृष्टि में अहिंसा किसके लिए कितनी व्यवहार्य?

ले.-पं. वेद प्रकाश शास्त्री, शास्त्री भवन, फाजिल्का

(गतांक से आगे)

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
एतं सामासिकं धर्म चातुर्वर्ण्येऽब्रीन्मनु।।
मनु. 10/63

मनु ने चारों वर्णों का संक्षिप्त रूप से यह धर्म बताया है-अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), शौच (शुद्धता), इन्द्रियनिग्रह (इन्द्रियों को वश में रखना)।

कुल्लूक भट्ट के अनुसार-अहिंसा=हिंसात्यागः।

योगिराज श्री कृष्ण कहते हैं-

ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते।। गीता. 17/14

ब्रह्मचर्य और अहिंसा शरीर सम्बन्धी तप कहा जाता है।

स्पष्ट है कि मनसा, वाचा, कर्मणा किसी के भी प्रति अनिष्टता का अभाव, किसी भी प्राणी को न मारना, न ही पीड़ा देना अहिंसा है। यह व्यक्ति, समाज, राष्ट्र एवं विश्व सभी के लिए अत्यावश्यक है। यह न केवल योगी, साधु, सन्त, निस्पृह, त्यागी, तपस्वी, महात्मा सदृश व्यक्तियों के लिए ही आवश्यक है अपितु प्रत्येक जनसाधारण व्यक्ति, नेता, अभिनेता तथा सभी उत्तरदायी मनुष्यों के लिए भी सार्वदेशिक एवं सार्वकालिक आचरणीय है।

हिंसा के प्रकार

1. कायिक हिंसा-कायेन हस्तादिना।

किसी प्राणी का प्राण हरण करना, अंग भंग करना अथवा अन्य किसी भी प्रकार से शारीरिक पीड़ा पहुंचाना कायिक हिंसा है।

2. मानसिक हिंसा-मनसा संकल्पेन।

किसी के मन को कष्ट देना अथवा मन से क्लेश देने के सम्बन्ध में सोचना मानसिक हिंसा है।

3. वाचिक हिंसा-परुषया मर्मच्छिदा वाचा।

कठोर भाषण के द्वारा दूसरों को कष्ट पहुंचाना वाचिक हिंसा है। अतः

1. सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयाद् एष धर्मः सनातनः।। मनु. 4/138

सच बोलो, प्रिय बोलो, कटु सत्य मत बोलो। प्रिय झूठ न बोलो। यही सनातन धर्म है।

2. तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सूनृता।
एतान्यपि सता गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन।। मनु. 3/101

बैठने के लिए तिनके से बना आसन, स्थान, जल और चौथी मीठी वाणी-ये सज्जनों के घर में कभी भी नष्ट नहीं होती।

3. प्रिय वाक्यप्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः।
तस्मात् तदैव वक्तव्यं वचने का दरिद्रता।।

प्रिय वचन बोलने से सभी प्राणियों को प्रसन्नता प्राप्त होती है। अतः प्रिय वचन ही बोलने चाहिए। वचनों में क्या कंजूसी।

सभी प्राणियों के प्रति समदृष्टि

मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह समस्त प्राणियों को आत्मवत् देखे। वस्तुतः यही धर्म का सार है-

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।।

हे मनुष्यो! धर्म का सर्वस्व, मुख्य तत्त्व अर्थात् सार सुनो और ध्यानपूर्वक सुनकर उसे धारण करो। वह यह है कि अपनी आत्मा के विपरीत दूसरे किसी के साथ भी आचरण मत करो अर्थात् जैसा अपने प्रति अच्छा व्यवहार चाहते हो, वैसा ही दूसरों के साथ अच्छा व्यवहार करो।

हम सभी का यह परम कर्त्तव्य है कि सभी प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखें-

मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।। यजु. 36/18

वेद कहता है-सभी प्राणियों के प्रति आत्मवत् दृष्टि रखो-

यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते।। यजु. 40/6

जो मनुष्य भूतों अर्थात् जड़-चेतन सृष्टि को आत्म-तत्त्व में ही स्थित अनुभव करता है तथा सभी भूतों के अन्दर इस आत्मतत्त्व को समाहित अनुभव करता है, वह आत्मदर्शन के कारण किसी से घृणा नहीं करता।

जब व्यक्ति के अन्दर ऐसी भावना आ जाती है, तो हमें समझ लेना चाहिए कि वास्तव में यही यथार्थ द्रष्टा है।

आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पश्यति।।

जो पुरुष अपनी आत्मा के समान समस्त प्राणियों में भावना रखता है, वस्तुतः वही देखता है।

आठ प्रकार के हत्यारे

घातक अथवा हत्यारा किसे कहते हैं? मनु महाराज इसका बहुत अच्छा विश्लेषण करते हुए कहते हैं-

अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी।
संस्कर्ता चोपहर्ता च खादकश्चेति घातकाः।। मनु. 5/51

मारने की अनुमति देने वाला, अंगों को काट-काट कर अलग करने वाला, मारने वाला, खरीदने वाला, बेचने वाला, पकाने वाला, परोसने वाला तथा खाने वाला-ये आठ घातक अर्थात् हत्यारे हैं।

वेद में हिंसा का निषेध

इसीलिए वेद में पशुओं की रक्षा के लिए प्रार्थना की गई है-

पशून् मे पाहि।। यजु. 3/37

भगवन्! मेरे पशुओं की रक्षा करो।

यजमानस्य पशून् पाहि।।
यजु. 1/1

हे परमात्मन्! यजमान के पशुओं की रक्षा करें।

मा मा हिंसीः।। यजु. 3/63
आप मुझे हिंसित मत करें।
मैनं हिंसीः।। यजु. 4/1
इसकी हिंसा मत करें।
मा यज्ञं हिंसिष्टं मा यज्ञपतिम्।।
यजु. 12/60

यज्ञ की हिंसा मत करो अर्थात् यज्ञ का लोप मत करो। तुम्हारा यज्ञ निर्विघ्न और अविच्छिन्न बना रहे। अपवित्र पदार्थ डाल कर यज्ञ को अपवित्र न करो। यज्ञपति अर्थात् यज्ञकर्ता की हिंसा मत करो।

मा हिंसिष्टं पितरं मातरं च।।
अथर्व. 6/140/2,3

माता-पिता की हिंसा मत करो अर्थात् उन्हें मनसा, वाचा, कर्मणा किसी प्रकार का कष्ट मत दो, पीड़ित मत करो।

एष मा हिंसीद् वेदः पृष्टः।।
अथर्व. 7/54/2

यह पूछा गया वेद-ज्ञान मुझे हिंसित न करे अर्थात् दुःख न देवे।

हिंसा कितनी व्यवहार्य?

हिंसा किसके लिए कितनी व्यवहार्य है? आइए, इस पर भी चिन्तन करें-

उल्लिखित पृष्ठों में वर्णित अहिंसा का पालन प्रत्येक मनुष्य के लिए आवश्यक है। चाहे वह साधु हो या संन्यासी, ब्रह्मचारी हो या गृहस्थ, कर्मचारी हो या अधिकारी, मजदूर हो अथवा उद्योगपति, राजा हो या रंक।

इतना होते हुए भी कुछ परिस्थितियां ऐसी भी होती हैं, जिनमें प्रत्येक व्यक्ति कुछ न कुछ (न्यूनाधिक) हिंसा अवश्य ही करता है अथवा करना पड़ता है अथवा समयानुसार करना ही चाहिए। यथा-

घर में कीड़े-मकोड़े, मक्खी-मच्छर, चींटी-चींटा, काक्रोच, पिस्सू, खटमल, चूहे, बिच्छू, मकड़ी, सर्प, दीमक, घुन, कनखजूरा, जुआं, चीलर, किलनी, कुएं-तालाबों में उत्पन्न कीड़े, हानिकारक जीवजन्तु, घर में लगे पेड़-पौधों पर स्थित कीट-पतंगे, ततैया (डेमू, भूंड) आदि विभिन्न प्रकार के हानिकारक रोग-कृमियों को नष्ट कर देते हैं। अब तो अनेक प्रकार की कीटनाशक दवाईयां भी उपलब्ध हैं।

किसान खेतों में हानिकारक जीवजन्तु टिड्डी, तेला, सफेद मक्खी, मिलीबग सदृश कीटों की समाप्ति के लिए कीटनाशक औषधियों का प्रयोग करते हैं।

सरकारी अभियान-समय-समय पर सरकार द्वारा बीमारियों को फैलने से रोकने के लिए अभियान चलाए जाते हैं। घरों, गलियों, नालियों, पार्कों एवं अन्य संवेदनशील स्थानों पर दवाईयों का छिड़काव किया जाता है। जिससे रोगजनक कीटाणुओं, रोगाणुओं का नाश किया जा सके। विभिन्न प्रकार का टीकाकरण भी किया जाता है। डेंगू, चिकनगुनिया, मलेरिया की रोकथाम के लिए तो विशेष अभियान चलाए जाते हैं।

वेद भी एतादृश हानिकारक कृमियों के नाश का आदेश देता है-

दृष्टमदृष्टमतृहमथो कुरूरुमतृहम्।
अल्गण्डून्त्सर्वाञ्छलुनान् क्रिमीन् वचसा जम्भयामसि।।
अथर्व. 2/31/2

दिखाई पड़ते हुए और न दिखाई पड़ते हुए कृमियों को मैंने नष्ट कर दिया है। भूमि पर रेंगने वाले, बुरी तरह सताने वाले या भिनभिनाने वालों को मैंने नष्ट कर दिया है। सभी उपधानों (तकियों) में भरे हुए बड़े वेग से चलने वाले कीड़ों को वचन से मार डालो अर्थात् उन्हें मारने का आदेश दो।

जैसे मनुष्य बड़े और छोटे क्षुद्र जन्तुओं को, जो अशुद्धि, मलिनता आदि से उत्पन्न होकर बड़े-बड़े रोगों के कारण होते हैं-उन्हें मार डालते हैं। इसी प्रकार अपने छोटे-बड़े दोषों का भी शीघ्र ही नाश करना चाहिए।

(क्रमशः)

मानव-समाजोत्थान की दिशा में वैदिकवाङ्मय में प्रेरक तत्त्व

ले.-डॉ. प्रशस्यमित्र शास्त्री (महोपदेशक) साहित्य अकादमी एवं राष्ट्रपति द्वारा सम्मानित बी-29, आनन्द नगर, जेल रोड़, रायबरेली

विश्व साहित्य के इतिहास में, जिस प्रकार संस्कृत भाषा अत्यन्त प्राचीन मानी जाती है, उसी प्रकार संस्कृत भाषा में उपनिबद्ध वैदिकवाङ्मय का महत्त्व भी न केवल अत्यन्त प्राचीनतम है अपितु उपयोगिता की दृष्टि से यह आज भी मानव-समाज के लिए न केवल अत्यन्त आवश्यक है, अपितु हमारे संस्कृत साहित्य के लिए यह आज भी प्रेरणा का स्त्रोत है। महाभारत के अनुशासनपर्व में वैदिकवाङ्मय की प्राचीनता एवं उपयोगिता के सन्दर्भ में एक श्लोक मिलता है-

यानीहागमशास्त्राणि याश्च काश्चित् प्रवृत्तयः।
तानि वेदं पुरस्कृत्य प्रवृणनि यथाक्रमम्।। -महा० 122/4

याज्ञवल्क्य स्मृति में भी लिखा है-

न वेदशास्त्रादन्यत्तु किञ्चिच्छास्त्रं हि विद्यते।।

निःसृतं सर्वशास्त्रं तु वेदशास्त्रात् सनातनात्।। -याज्ञ-वल्क्य० 12/1

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि समाजिक एवं व्यावहारिक ज्ञान के लिए भी वैदिकवाङ्मय के उपदेश हमारे लिए प्रारम्भ से ही उपलब्ध रहे हैं। इन समस्त उपदेशों का मूल हमारे भारतीय वाङ्मय में वेद ही रहा है। मनुस्मृति में तो लिखा है कि-वेदशास्त्र के वेत्ता को राज्यवस्था, सैन्यनीति तथा दण्डनीति आदि सामाजिक एवं राजनैतिक प्रशासन का भी पूर्ण ज्ञान होता है-

सेनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च।
सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्र-विदर्हति।। -मनु० 12/100

इस प्रकार वैदिकवाङ्मय की उपयोगिता हमारे लिए आवश्यक प्रतीत होती है। मध्यकाल में वैदिकवाङ्मय का अध्ययन बहुत कम हो गया था। वेदों की उपयोगिता अनेक आचार्यों ने केवल यज्ञ-याग में मन्त्र पाठ तक सीमित कर दी थी। वेद कुछ निहित लोगों की ही वस्तु बनकर रह गए थे। यह माना जाने लगा कि 'यज्ञार्थ वेदा अभिप्रवृत्ता' अर्थात् वेदों की रचना का उद्देश्य केवल मात्र यज्ञ-भूमि तक ही है। वेदमन्त्रों में व्यक्त विचार हमारे दैनिक-जीवन में कितने उपयोगी तथा मानव-समाज के कल्याण के लिए कितने आवश्यक हैं इसका आधुनिक युग में परिचय कराने का श्रेय 19वीं शताब्दी के महान् वेद-चिन्तक महर्षि दयानन्द को जाता है।

महर्षि दयानन्द ने वेद को कुछ सीमित पढ़ने-पढ़ाने वाले व्यक्तियों के बीच से निकालकर इसको व्यापक आयाम दिया। स्वयं वेद में लिखा है कि इसे ज्ञान मानव-मात्र के लिए है, केवल किसी एक व्यक्ति विशेष या वर्गविशेष के लिए नहीं। यह तो समाज के प्रत्येक वर्ग के लिए उपयोगी एवं अधिकृत है-

यथेमां वाचं कल्याणी-मावदानि जनैभ्यः
ब्रह्मराजन्याभ्याꣳशूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च।।
-यजु० 26/2

मध्यकाल में स्त्रियाँ, शूद्र एवं अन्य बहुत सारे पिछड़े लोग इसलिए नहीं पढ़ पाते थे क्योंकि अध्ययन का चरम ज्ञान 'वेद' को उन्हें पढ़ने का अधिकार नहीं प्राप्त था। इसी कारण वेद के पढ़ने वालों की संख्या सीमित होती गयी तथा उसकी सामान्य समाज में उपयोगिता भी अल्पतम होती गयी। महर्षि दयानन्द 19वीं शताब्दी के प्रथम ऐसे भाष्यकार थे जिन्होंने वेद को यज्ञ के मात्र कर्मकाण्ड से हटाकर उसकी उपयोगिता का डिण्डिम-नाद करते हुए उसकी सामाजिक उपयोगिता बताई तथा अपने वेदभाष्य में सामान्य मानवीय व्यवहार का व्याख्याता वेद है, इसको स्वीकार किया। इसी कारण उनका वेदभाष्य सामान्य तथा पूर्व आचार्यों की याज्ञिक पृष्ठभूमि की व्याख्या की लीक से हटकर एक ऐसा व्यापक अर्थ प्रकट करने वाला तथा सब प्रकार का मानवीय, सामाजिक मूल्यों का प्रतिष्ठापक अर्थ की व्याख्या करने वाला माना गया।

1. पुरुषार्थ प्रेरित यथार्थवाद-मध्यकालीन चिन्तन जहाँ मनुष्य में पराधीनता, हताशा, जुगुप्सा, दैन्य एवं आत्मग्लानि का भाव भरता है, वहीं वेद का चिन्तन हमें आज भी पुरुषार्थ के लिए प्रेरित करता है। वैदिक-संहिताओं ने हमें आशा, उद्यम तथा पुरुषार्थ का सन्देश दिया है। यहाँ-''पापोऽहंपापकर्माऽहं पापात्मा पापसम्भवः'' का उद्घोष नहीं है। यजुर्वेद में कहा गया है-''शुक्रोऽसि भ्राजोऽसि''-अर्थात् हे जीव! तू शुद्ध है, तेजः स्वरूप है। वेद में सन्तान के वीर एवं बलवान् होने की कामना करते हुए लिखा है-''अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्तु'' (यजु. 17!43) इसमें समग्र विश्व को आर्य अर्थात् श्रेष्ठ बनाने की कामना है-**''इन्द्रं वर्धन्तो असुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम्।'' (ऋ. 9/63/5)**

अथर्ववेद कहता है-

यथा सूर्यो अतिभाति यथाऽ-स्मिन्तेज आहितम्।
एवा में वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु।। -अथर्ववेद 10।3।17

अर्थात् मनुष्य को चाहिए कि यह प्रार्थना करे तथा विचारे कि जैसा तेज सूर्य में समाविष्ट है वैसा ही तेज एवं ऊर्जा हमारे अन्दर विद्यमान हो तथा हमें स्वात्म-प्रकाश से परिपूर्ण होकर संसार में चमकाये।

2. सदाचारोन्मुख जीवन-वेद में सामाजिक स्वारस्य एवं आदर्श प्रेरित मानव-समाज के लिए नाना प्रकार की मर्यादाओं की भी चर्चा की गयी है। ऋग्वेद में लिखा है-

सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुस्ता-सामेकामिदभ्यैहुरोगात्।।
-ऋ० 10/5/6

अर्थात् हिंसा, चोरी, व्यभिचार, मद्यपान, जुआ, असत्य-भाषण और इन पापों को करने वाले दुष्टों के असहयोग का नाम ही सप्तमर्यादा है। इनमें से एक भी मर्यादा का उल्लघंन करने वाला एक पाप करता है और वह पापी होता है।

अथर्ववेद में लिखा है-

न द्विषन्नशनीयात् न द्विषतोऽन्न-मश्नीयात्।। -अथर्व० 9/6/24

अर्थात् न द्वेष करता हुआ अन्न खाए और न ही द्वेषी का अन्न खावे।

वेद में जुआ खेलने की निन्दा करते हुए कर्मठ जीवन बताकर कृषि आदि द्वारा परिश्रमपूर्वक धन प्राप्त करने की प्रशंसा की गई है। ऋग्वेद में आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया 'अक्ष-सूक्त' इसका प्रमाण है। वहाँ स्पष्ट लिखा है-

अक्षैर्मादीव्यः कृषिमित्कृषस्व वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः।।
-10/34/13

मीठा और सुन्दर वचन बोलने के लिए वेद प्रेरित करते हुए कहते हैं-

घृतात् स्वादीयो मधुनश्च वोचता।। -ऋ० 8/24/20

अर्थात् घृत और मधुर से भी मीठा वचन बोलना चाहिए।

1. विश्वबन्धुत्व की भावना-वेदों में विश्वबन्धुत्व की भावना अतिशय दृष्टिगत होती है। यहाँ अतिक्षुद्र सङ्कीर्ण भावना या प्रतिस्पर्धात्मक राष्ट्रवाद की भावना से भी ऊपर उठकर सम्पूर्ण पृथिवी को एक विशाल राष्ट्र के रूप में निरूपित करते हुए इसके समस्त प्राणियों में एक ऐसी विश्वबन्धुत्व की भावना को समाहित करने का उपदेश दिया गया है जो अन्य साहित्य में दुर्लभ है। यजुर्वेद में लिखा है-

मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।।
-यजु० 36/18

अर्थात् मैं प्राणिमात्र को मैत्रीपूर्ण-दृष्टि से देखूँ तथा समस्त जीव भी मुझे मैत्रीपूर्ण निर्भय-दृष्टि से देखें। इस प्रकार हम एक दूसरे के लिए मित्रवत् रहें।

सामवेद के एक मन्त्र में लिखा है कि स्तुति करने वालो! तुम सब आओ, हम सब लोग एक साथ बैठकर प्रभु का गुणगान करें तथा उसकी महिमा भी बखानें-

सखाय आ नि षीदत पुनानाय प्र गायत। -सामवेद 568

यह भूमि मेरी माता है तथा इसका मैं पवित्र पुत्र हूँ।

माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः।
-अथर्व० 12/1/12

इस प्रकार हम देखते हैं कि वेद में एक विश्वजनीन भावना वर्णित है जो आजकल के स्वार्थ-प्रधान मानवसमाज में एक ज्योतिपूर्ण आशा का सञ्चार करता है।

4. पारिवारिक-जीवन के सन्दर्भ में वेद-वेदों में नारी को भी पुरुष के समान ही परिवार-निर्माण में एक सहयोगी की भूमिका के रूप में देखा गया है। उसका स्थान किसी भी प्रकार कम नहीं है। उसे परिवार में आदर के साथ 'सम्राज्ञी' की पदवी प्रदान की गई है जो उसके

(शेष पृष्ठ 6 पर)

प्रेरणा पुंजः दयानंद

ले.-हरि किशोर 1010, Sector 46/B चण्डीगढ़

(गतांक से आगे)

संन्यासियों, विद्वानों और समाज सुधारकों से मिलकर भी अच्छे परिणाम न मिले तो स्वामी जी ने सीधे जनता से लोकसंपर्क करना प्रारम्भ कर दिया। उनके प्रवचन एवं उपदेशों से जनता जागृत हो गयी। जो काम संन्यासी, विद्वान और सुधारक न कर सके वह काम जनता ने अपने हाथ में ले लिया। स्वामी दयानंद की सफलता लोक संपर्क के कारण संभव हो सकी।

स्वामी जी ने उच्च कोटि के ग्रन्थ लिखे जो मानव मात्र के लिए सदैव उपयोगी रहेंगे।

उन्होंने सन् 1874 में हिन्दी में ही अपने कालजयी ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' की रचना की। वर्ष 1908 में इस ग्रन्थ का अंग्रेजी अनुवाद "light of truth" भी प्रकाशित किया गया। उनके अन्य प्रमुख ग्रन्थ हैं-संस्कार विधि, पंचमहायज्ञ विधि, ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका, आर्याभिविनय, वेद भाष्य का नमूना, चतुर्वेद विषय सूची, यजुर्वेद भाष्य, आर्योद्देश्यरत्नमाला, व्यवहारभानु, गौकरुणानिधि, संस्कृत वाक्य प्रबोध, वर्णोच्चारण शिक्षा, अष्टाध्यायी भाष्य, वेदांग प्रकाश... आदि। कुछ विद्वानों के अनुसार उन्होंने कुल 60 पुस्तकें 14 संग्रह, वेदांग अष्टाध्यायी टीका और अनेक लेख लिखे।

स्वामीजी की स्पष्ट घोषणाएँ

सब मनुष्य आर्य (श्रेष्ठ) हैं।

वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है अतः वेदों की ओर लौट चलो।

ईश्वर निराकार और सर्वशक्तिमान है।

श्रेष्ठ कर्म, परोपकार तथा योगाभ्यास से ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है।

मूर्तिपूजा वेद विरुद्ध है जो भारत की पराधीनता का कारण भी बनी।

जन्म-जात जाति व्यवस्था गलत परन्तु कर्मानुसार वर्ण व्यवस्था उचित है।

कोई वर्ण ऊंचा या नीचा नहीं है अपितु सारे वर्ण समान है।

स्त्री, शूद्रों सहित सभी को वेद पढ़ने का अधिकार यजुर्वेद देता है-यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः/स्वराज्य सर्वोत्तम होता है अतः विदेशी राजा हमारे ऊपर कभी शासन ना करें।

हिंदी द्वारा सम्पूर्ण भारत को एकसूत्र में पिरोया जा सकता है।

गणित ज्योतिष (astronomy) सत्य लेकिन फलित ज्योतिष (astrology) असत्य है।

मनुष्य का आत्मा सत्य और असत्य का जानने वाला है।

अपनी भाषा, संस्कृति और भारतीयता पर गर्व होना चाहिए।

संसार का उपकार करना आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य है।

मनुर्भव अर्थात् मनुष्य को सच्चे अर्थों में मनुष्य बनना चाहिए।

स्वामी दयानंद ने देश में रूढ़ियों, कुरीतियों, आडम्बरों, पाखण्डों आदि से मुक्त एक नए स्वर्णिम समाज की स्थापना के उद्देश्य से 10 अप्रैल सन् 1875 (चैत्र शुक्ल प्रतिपदा संवत 1932) को गिरगांव मुम्बई में 'आर्य समाज' नामक सुधार आन्दोलन की स्थापना की। 24 जून 1877 (ज्येष्ठ सुदी 13 संवत् 1934 व आषाढ़ 12) को संक्रांति के दिन लाहौर में 'आर्य समाज' की स्थापना हुई, जिसमें आर्य समाज के दस प्रमुख सिद्धान्तों को सूत्रबद्ध किया गया। ये सिद्धांत आर्य समाज की शिक्षाओं का मूल निष्कर्ष हैं।

इसके बाद देश के कोने-कोने में आर्य समाज की इकाईयां गठित हुईं और वैदिक धर्म का व्यापक प्रचार प्रसार हुआ। देशभर में जाति-पाति, ऊँच-नीच, छूत-अछूत, सती प्रथा, बाल-विवाह, नर-बलि, गोहत्या, धार्मिक संकीर्णता, अंधविश्वास, कुरीति, कुप्रथा आदि हर सामाजिक समस्या के विरुद्ध सशक्त जागरूकता अभियान चले और एक नए समाज के निर्माण का मार्ग प्रशस्त हुआ। आर्य समाज ने पं. राम प्रसाद बिस्मिल, लाला लाजपतराय, अशफाक उल्लां खां, दादा भाई नारौजी, स्वामी श्रद्धानंद, भगत फूल सिंह, श्याम जी कृष्ण वर्मा, भाई परमानंद, वीर सावरकर, सरदार भगत सिंह, मदन लाल धींगड़ा, लाला हरदयाल मैडम भीकाजी कामा, सरदार अजीत सिंह, चौधरी मातूराम आदि न जाने कितने ही राष्ट्रभक्त पैदा किये। स्वामी दयानंद सरस्वती के तप, योग, साधना, वैदिक प्रचार समाजोद्धार और ज्ञान का लोहा बड़े-बड़े विद्वानों और समाजसेवियों ने माना। डा, भगवानदास ने उन्हें 'हिन्दू पुनजार्गरण के मुख्य निर्माता की संज्ञा दी तो पट्टाभि सीतारमैया ने 'राष्ट्र-पितामह' की उपाधि से अलंकृत किया। सरदार पटेल के अनुसार भारत की स्वतंत्रता की नींव वास्तव में स्वामी दयानंद ने डाली थी। लोकमान्य तिलक ने स्वामी जी को 'स्वराज्य का प्रथम संदेशवाहक' कहा तो नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने 'आधुनिक भारत का निर्माता' कहा।

स्वामी दयानंद जी वर्ष 1883 ई. में महाराजा के निमंत्रण पर जोधपुर पहुंचे। वहाँ उन्हें एक बड़े षड्यंत्र के अंतर्गत रसोईए के हाथों रात्रि के भोजन में विष खिला दिया गया। भयंकर विष ने अपना प्रभाव दिखाया और स्वामी जी तड़पने लगे। रसोईये को बहुत पश्चाताप हुआ और उसने स्वामी जी के चरण पकड़कर अपने अक्षम्य अपराध के लिए क्षमा-याचना की। इस पर सन्यासी ने रसोईये को न केवल क्षमा किया, अपितु धन देकर राज्य से बाहर नेपाल भेज दिया, ताकि सच का पता लगने पर महाराजा उसे कठोर दण्ड न दे। एक और षड्यंत्र स्वामी जी की चिकित्सा में लगे डॉक्टर अली मरदान खां ने रचा, उसने चिकित्सा के नाम पर कैलोमल रसायन (मरक्यूरस क्लोराइड) अत्यधिक मात्रा में, लगातार देना जारी रखा।

महर्षि दयानंद आर्य समाज के संस्थापक, महान समाज सुधारक, राष्ट्र-निर्माता, प्रकाण्ड विद्वान, सच्चे सन्यासी, ओजस्वी सन्त और स्वराज के संस्थापक थे। एक सच्चे आचार्य की तरह वे राष्ट्र को अभाव, अशिक्षा और अन्याय से मुक्त कर आत्मनिर्भरता, शिक्षा और न्याय की ओर ले जाने के लिए जीवन भर प्रयास करते रहे। मानव मात्र के उत्थान को सुनिश्चित करने के लिए उन्होंने वेदों की ओर लौट चलो का नारा दिया। अपना सर्वस्व बलिदान करने वाले ऋषि दयानंद के मंतव्य और उद्देश्य आज भी हम सब के लिए प्रेरणा का स्त्रोत हैं।

पृष्ठ 6 का शेष-मानव-समाजोत्थान की दिशा...

लिए श्वसुर-सास और ननद की दृष्टि से भी है-

सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव।

ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु।। -ऋ० 10/75/46

वह पति एवं घर के लिए पूर्णतया सुखकारी (स्योना) होती है-

स्योना भवश्वशुरेभ्यः स्योना पत्ये गृहेभ्यः। -अथर्व० 14/2/26

वेद में पत्नी को सदा शान्त एवं मधुवाणी में ही पति से बात करने की चर्चा है क्योंकि पारिवारिक शान्ति के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है-

जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम्।

-अथर्व० 3/30/2

पति-पत्नी को चक्रवाक अर्थात् चकवा-चकवी के समान एक दूसरे के साथ प्रेमपूर्वक रहने की चर्चा की गई है-

चक्रवाकेव दम्पती।

-अथर्व० 14/2/64

पारिवारिक-सन्दर्भ में पिता-पुत्र, भाई-बहन तथा भाई-भाई एवं बहन-बहन का भी आपसी सम्बन्ध विद्वेषरहित हो, इसकी स्पष्ट चर्चा है-

अनुव्रतः पितुः पुत्रों मात्रा भवतु संमनाः।। -अथर्व० 3/30/2

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन् मा स्वसारमुत स्वसा।।

-अथर्व० 3/30/3

इस प्रकार हम देखते हैं कि वैदिकवाङ्मय हमें बहुविध, व्यापक-रूप में जीवन, समाज-व्यवस्था बिन्दुओं पर समग्र-रूप से चिन्तन प्रस्तुत करते हुए उत्थान की प्रेरणा देता है।

यह सामञ्जस्य एवं प्रगति-शीलता ही वेद की सबसे बड़ी विशेषता है। इसी कारण यह हमें आज भी उतना ही उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण प्रतीत होता है जितना कि भूतकाल में कभी था।

पृष्ठ 2 का शेष-कर्तव्याकर्तव्य

(7) चाटुकार (8) प्रशंसा के गीत गाने वाले चारण तथा (9) चोर इन नौ प्रकार के व्यक्तियों को कुछ भी नहीं दिया जाना चाहिए।

(9) आपत्ति काल में भी अदेय नौ वस्तुएं।

प्रजापति दक्ष ने बताया है कि निम्न नौ वस्तुओं को विपत्ति काल में भी किसी को भी नहीं देना चाहिए।

सामान्यं याचितं न्यस्तमाधि-दाराश्च तद्धनम्।

अन्वाहितं च निक्षेपः सर्वस्वं चान्वये सति।। दक्ष स्मृत 3/17

(1) सर्व सामान्य जनता की सम्पत्ति (2) चंदे की राशि (3) दूसरे को देने को मिली हुई वस्तु या धरोहर की सम्पत्ति (4) बन्धन (गिरवी) की वस्तु (5) अपनी पत्नी (6) पत्नी का धन (7) जमानत की सम्पत्ति (8) जमानत की वस्तु (9) सन्तान परम्परा के होने पर अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति।

मैं समझता हूं कि हम यदि दक्ष स्मृति के बताए गए कर्त्तव्यों का पालन करें और अकर्त्तव्यों से दूर रहें तो हमारा जीवन वास्तव में सफल हो जायेगा।

पहला सुख नीरोग काया

ले.-प्रा. भद्रसेन-होशियारपुर

''जीवन का बड़े से बड़ा सहज आनन्द है-स्वस्थता। यही अधिकांश सुखों का मूल है और बड़े से बड़ा दु:ख है-अस्वस्थता। यही अनेक दु:खों की जड़ है।''

जितने भी सांसारिक सुख एवं कार्य हैं, उनकी प्राप्ति का प्रथम साधन आरोग्य है, क्योंकि उसके होने पर ही सब प्रकार के सुख प्राप्त किए जा सकते हैं। और स्वस्थ ही हर प्रकार के भोगों को भोगने में समर्थ होता है।

मानव अपने जीवन को सुखी बनाने के लिए अनेक वस्तुओं का संग्रह करता है। वह संग्रह मनुष्य को तभी सुख दे सकता है, जब वह नीरोग होता है। रोगी होने पर वह किसी प्रकार का भी सुख प्राप्त नहीं कर सकता। रोगी और कुछ तो क्या करेगा, वह तो अपने आपको भी सम्भाल नहीं सकता। इसीलिए ही रोगी की दशा का चित्रण करते हुए विदुर जी ने कहा है :-

रोगार्दिता न फलान्याद्रियन्ते,
न वै लभन्ते विषयेषु तत्त्वम्।
दु:खोपेता रोगिणो नित्यमेव,
न बुधयन्ते धनभोगान्न सौख्यम्।। (४,६१)

रोगी को न तो अच्छे से अच्छे फल आनन्द देते हैं, न ही इन्द्रियों के सुन्दर से सुन्दर विषयों में मज़ा आता है और न वह, धन, अन्न, वस्त्रादि भौतिक पदार्थों से किसी प्रकार का सुख प्राप्त कर सकता है।

गर दौलतों से भरा है-तेरा तमाम घर।
बीमार है तो ख़ाक से बदतर है यह मगर।।

रोगी तो केवल पड़े-पड़े दु:खों से तड़पा करते हैं। रोगी के बस का और तो क्या, वह तो आराम से गद्दों पर भी लेटा नहीं रह सकता, अर्थात् नींद का आनन्द भी स्वस्थ व्यक्ति ही उठा सकता है। अतएव आयुर्वेद के मान्य ग्रन्थ चरक-संहिता में कहा है:-

सर्वमन्यत् परित्यज्य शरीर-मनुपालयेत्।
तदभावे हि भावानां सर्वाभाव: शरीरिणाम्।।

अन्य सब कार्यों को छोड़कर प्रथम शरीर की देखभाल करे, क्योंकि उसके अभाव से अर्थात् शरीर के बीमार होने पर शरीर वालों के लिए सब कुछ होता हुआ भी बेकार हो जाता है।

अत: अक्लेशेन शरीरस्य कुर्वीत धनसञ्चयम्। (मनु० ४,३)

धन इकट्ठा करने के लिए उतना ही कार्य करे, जिससे शरीर पर अत्यधिक भार न पड़े। अर्थात् कोई कार्य करते हुए शारीरिक स्वास्थ्य का हर स्थिति में ध्यान रखना चाहिए। अन्यथा स्वास्थ्य के बिगड़ने पर वे कार्य भी न हो सकेंगे।

विचारशीलों को कथन है कि मानव-जीवन के चार उद्देश्य हैं, जिनको पुरुषार्थ-चतुष्टय के नाम से भी स्मरण करते हैं और वे हैं-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। अर्थात् अन्य योनियों की अपेक्षा मानव-जीवन की सार्थकता तभी है, जब इस अनमोल दुर्लभ चोले को पाकर व्यक्ति अभ्युदय [अर्थ, काम] और नि:श्रेयस [धर्म, मोक्ष] को प्राप्त करे। इनकी प्राप्ति का पहला साधन आरोग्य ही है, अर्थात् स्वस्थ ही सांसारिक सुख सुविधाओं और आत्मिक साधना की सिद्धि कर सकता है:-

नायमात्मा बलहीनेन लभ्य:।

इसी भाव को कविकुल गुरु कालिदास ने इन शब्दों में कहा है:-

शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।

अत: हर प्रकार की सुख सुविधाओं, सफलताओं एवं प्रगतियों का प्रमुख आधार स्वस्थ ही है।

तभी तो कहते हैं-सेहत हजार निआमत है। स्वास्थ्य चला गया तो सब कुछ चला गया, और रोगी की दशा 'धोबी का कुत्ता घर का न घाट का' जैसी ही होती है।

स्वस्थ शरीर की उपयोगिता को बताते हुए शरीर-यात्रा के पारखी चरक ने कहा है-

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्।
रोगास्तस्यापहर्त्तार: श्रेयसो जीवितस्य च।।
(सूत्र० १,१५-१६)

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति का एक उत्तम उपाय आरोग्य ही है तो इस आरोग्य के नाशक रोग हैं, जो मनुष्य को पुरुषार्थ सिद्धि और कल्याण से वञ्चित कर देते हैं। रोग मनुष्यों के बहुत बड़े शत्रु हैं-

''समौ हि शिष्टै राम्नातौ वर्त्स्यन्तावामय: स च।''
(माघ २,१०)

क्योंकि श्रेष्ठ जनों ने बढ़ते हुए रोग तथा शत्रु को समान ही कहा है।

रोगाश्च शत्रव इव प्रहरन्ति देहम्।।

रोग शत्रुओं की भान्ति शरीर पर प्रहार करते हैं।

अत: यह सर्वविदित बात है कि स्वस्थ व्यक्ति ही अपने जीवन के उद्देश्यों और सांसारिक सुख-सुविधाओं को प्राप्त कर सकता है। इसीलिए स्वास्थ्य के महत्त्व को ध्यान में रखते हुए स्वास्थ्य विज्ञान को शिक्षा में विशेष स्थान देना चाहिए। वस्तुत: जानने योग्य प्रथम बात यही है।

स्वस्थ की परिभाषा-

सब कुछ की प्राप्ति का मुख्य आधार होने से यह विचारना अत्यावश्यक हो जाता है कि स्वस्थ किस को कहते हैं? शरीर-शास्त्र के प्रतिपादक महान् सुश्रुतकार ने कहा है-

अन्नाभिलाषो भुक्तस्य परिपाक: सुखेन च।
सृष्टविण्मूत्रवातत्वं शरीरस्थ च लाघवम्।।
समदोष: समाग्निश्च सम-धातुमलक्रिय:।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमना: स्वस्थ इत्यभिधीयते।।
(सूत्र १५,४,७४)

भूख लगना, खाए का सरलता से हज़म होना, मलमूत्र और अपान-वायु का स्वाभाविक रूप से विसर्जित होना तथा शरीर का हल्कापन और जिसके वात-पित्त एवं कफ अपने शरीर की प्रकृति के अनुरूप समदशा में हैं, जठराग्नि पाचन-क्रिया को उचित प्रकार से करती है, शरीर के धारक रस-रक्त मांसमज्जा, मेद-अस्थि और वीर्य नामक सातों धातुएं अपने-अपने अनुपात से ठीक हैं। उपर्युक्त क्रियाओं के सुचारु रूप से होने के कारण जिसका आत्मा मन और इन्द्रिय प्रसन्न हैं वह स्वस्थ कहलाता है। स्वस्थ जो अपने आप में स्थित है अर्थात् जिस को अपने व्यक्तिगत कार्यों को करने के लिए दूसरों का मुँह ताकने की जरूरत नहीं होती। जो स्वावलम्बी, आत्म-निर्भर होने से अपने कार्यों को स्वयं कर लेता है। स्वस्थ ही अपने आप पर निर्भर होता है, परन्तु रोगी अपने आप में न रह कर दूसरों के आश्रय पर होता है। जैसे कि अत्यधिक शराब पी लेने पर शराबी अपने आप में नहीं रहता। उसके हाथ-पैर और वाणी आदि अंग लड़खड़ाते हैं, तथा उसको कुछ भी सुध-बुध नहीं रहती, कि मैं किस को क्या कह रहा हूं? सु+अस्+थ = स्वस्थ= जो अच्छी स्थिति में है। जिसकी शारीरिक मशीन ठीक होने से अपना सारा कार्य सुचारु रूप से करती है, वही स्वस्थ कहलाता है। जैसे एक अच्छा यन्त्र अपना काम ठीक ढंग से करता है।

अरोगता का मार्ग-

अत: यह सर्वथा सिद्ध है कि सभी प्रकार की सुख-सुविधाओं की प्राप्ति का आधार शारीरिक-आरोग्य है। यह विशेषत: चार बातों पर आधारित है। पवित्रता और प्रसन्नता के साथ इन सब के समुचित होने पर ही शरीर का पूर्ण विकास तथा संरक्षण होता है और वे हैं-भोजन, व्यायाम, ब्रह्मचर्य एवं निद्रा।

भोजन-

हम अपने व्यवहार की सिद्धि के लिए प्रतिक्षण शरीर का उपयोग करते हैं। इससे शरीर या उसकी शक्ति का ह्रास होता है। उसकी पूर्ति तथा विकास, सुरक्षा एवं शक्ति-संचय के लिए भोजन की आवश्यकता होती है। जिससे खाया हुआ भोजन रस, रक्त, मांस आदि में परिणत होकर शरीर का भाग बन सके। पौधे के विकास के लिए जैसे खाद, भूमि के पौष्टिक तत्त्वों, धूप और जल की आवश्यकता होती है, तथा जिस प्रकार के वे होते हैं, उसी प्रकार का ही पौधे का विकास होता है। ठीक ऐसे ही हमारा शरीर है। हमारा स्वास्थ्य प्रतिदिन प्राप्त होने वाले भोजन तथा सुविधाओं पर बहुत कुछ निर्भर है। जिसको जैसा भोजन प्राप्त होता है, उसका उसके शारीरिक विकास तथा बौद्धिक प्रगति पर सीधा प्रभाव पड़ता है। तभी तो कहा है-

आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धि: सत्त्वशुद्धौ च ध्रुवा स्मृति:।
(छा० उप० ७,२६,२१)
आहार उत्तम होने पर बुद्धि और स्मृति उत्कृष्ट होती है।
आयु:-सत्त्व-बलाऽऽरोग्य-सुख-प्रीति-विवर्धना:।
रस्या: स्निग्धा: स्थिरा हृद्या आहारा: सात्त्विकप्रिया:।।
(गीता १७.८)

आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख और प्रीति को बढ़ाने वाला तथा रसयुक्त, चिकना, स्थिर तथा मन को प्रिय लगने वाला पौष्टिक भोजन ही सात्त्विक पुरुष को प्रिय होता है। शारीरिक विकास की दृष्टि से घृत, दुग्ध, फल, अन्न आदि खाद्य, पेय पदार्थों को अपनी पाचन शक्ति और वात, पित्त एवं कफ प्रकृति के अनुसार ग्रहण करना चाहिए। अच्छे पोषक तत्त्व युक्त पदार्थ ग्रहण करने पर ही शरीर का पूर्ण विकास सम्भव है। समुचित भोजन स्वास्थ्य का एक आवश्यक अंग है। पोषक तत्त्व विविध गुणों के भेद से ही आज प्रोटीन और ए० वी० सी० आदि विटामिन (जीवन सत्त्व) के नाम से पुकारे जाते हैं। **(क्रमश:)**

माता-पिता अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा देकर उन्हें गुणवान बनाएं

आर्य समाज शहीद भगत सिंह नगर जालन्धर के साप्ताहिक सत्संग में मुख्य यजमान श्री सुरिन्द्र खन्ना एवं श्रीमती रीवा खन्ना, हनीश खन्ना शिव नगर जालन्धर तथा श्री मृणाल मल्होत्रा एवं श्रीमती जैसमीन मल्होत्रा, निखिल मल्होत्रा परिवार सहित यज्ञ में आहुतियां प्रदान करते हुये जबकि चित्र दो में उपस्थित आर्य भाई एवं बहिनें।

आर्य समाज शहीद भगत सिंह नगर जालन्धर का साप्ताहिक सत्संग रविवार को बड़ी श्रद्धा एवं हर्षोल्लास के साथ मनाया गया। इस अवसर पर मुख्य यजमान श्री सुरिन्द्र खन्ना एवं श्रीमती रीवा खन्ना, हनीश खन्ना शिव नगर जालन्धर तथा श्री मृणाल मल्होत्रा एवं श्रीमती जैसमीन मल्होत्रा, निखिल मल्होत्रा ने परिवार सहित यज्ञ वेदी पर उपस्थित होकर पवित्र पावन वेद मंत्रों से यज्ञ किया। यज्ञ ब्रह्मा एवं मुख्य वक्ता आचार्य सुरेश शास्त्री जी ने पवित्र पावन वेद मंत्रों से यज्ञ सम्पन्न करवाया। सभी श्रद्धालुओं ने बड़ी श्रद्धा से यज्ञ में आहुतियां प्रदान की। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के विद्वान आचार्य श्री सुरेश शास्त्री जी ने प्रवचन करते हुये कहा कि मातृमान, पितृमान् आचार्यवान पुरुषो वेद अर्थात जब तीन उत्तम शिक्षक एक माता, दूसरा पिता और तीसरा गुरु जब मिल कर संतान का निर्माण करते हैं तो वहीं सन्तान गुणवान, सभ्य और धार्मिक बन कर अपने कुल का नाम रोशन करती है। इसीलिये हर माता पिता का कर्त्तव्य है कि बच्चों को उत्तम शिक्षा प्रदान करें। जो माता पिता अपनी संतान का निर्माण नहीं करते हैं उनकी सन्तान अच्छे लोगों के बीच उसी प्रकार शोभायमान नहीं होती जिस प्रकार हंसों के बीच में बगुला शोभा नहीं पाता है। इसलिए माता-पिता का दायित्व है कि वे अपनी संतानों को उत्तम संस्कार देकर उन्हें सुयोग्य और विद्वान् बनाते है। ऐसे - ऐसे सुन्दर उपदेश माता और पिता को बच्चों को देने चाहिए ताकि सन्तान सदा आज्ञाकारी रहे। माता-पिता को बच्चे के प्रत्येक कार्य पर नजर रखनी चाहिए, उसकी अच्छी और बुरी आदतों का पता करना चाहिए और उसका सुधार करने के लिए सकारात्मक कदम उठाने चाहिए। बच्चों की किसी भी गलती को अनदेखा नहीं करना चाहिए। जो माता-पिता अपने बच्चों की छोटी-छोटी गलतियों से किनारा कर लेते हैं वे बाद में पछताते हैं। बच्चों और विद्यार्थियों का जीवन बड़ा पुरूषार्थ और निरालस्य होना चाहिए। कष्टों के पहाड़ ऊपर गिरने पर भी सहनशीलता को प्राथमिकता देनी चाहिए। संघर्ष का दूसरा नाम ही विद्यार्थी जीवन है। जो माता-पिता विद्यार्थी काल से अपने बच्चों का जीवन संघर्षमय बनाते हैं, उन्हें मेहनत का जीवन जीने की प्रेरणा देते हैं वही बच्चे आगे चलकर महान् बनते हैं और अपने लक्ष्य की ऊँचाईयों को प्राप्त करते हैं। संसार में जितने भी महापुरूष हुए हैं उन्होंने अपने जीवन में संघर्ष किया है, कठिन पुरूषार्थ किया है तभी इतने वर्षों के बाद भी हम उनके जीवन से प्रेरणा लिया करते हैं।

आर्य समाज के प्रधान श्री रणजीत आर्य ने कहा कि आप सभी का आर्य समाज की यज्ञवेदी पर पधारने के लिये हार्दिक धन्यवाद करता हूं। हम सभी अपने अपने परिवारों के साथ आर्य समाज में आकर अपने जन्म दिन और वैवाहिक वर्षगांठ मनाएं। उन्होंने कहा कि यहां पर आकर उत्तम विचार सुनने को मिलते हैं। प्रसिद्ध भजन गायिका भारती जी व सुषमा जी ने प्रभु भक्ति एवं जन्म दिन की बधई के मधुर भजन प्रस्तुत किये। कुमार तेजस अनमोल ने ऋषि महिमा का भजन प्रस्तुत किया। मंच का संचालन आर्य समाज के महामंत्री श्री हर्ष लखनपाल ने किया। इस अवसर पर सतपाल मल्होत्रा, सुरेन्द्र अरोडा, विजय चावला, बैजनाथ, चौधरी हरिश्चन्द्र, सुनीता भाटिया, डिम्पल भाटिया, उषा आहूजा, नवीन चावला, दीप्तांश चावला, किरण कुमार, केदारनाथ शर्मा, पूनम शर्मा, रविन्द्र आर्य, ललित मोहन कालिया, सुभाष आर्य, इन्दु आर्य, दिव्या आर्य, सान्या आर्य, सृष्टि आर्य, अनु आर्य, अमित सिंह, संदीप अरोडा, गीतिका अरोडा, ज्योति सिंह, रविश मल्होत्रा, विनय सिक्का, दिविताअरोडा, हितिशा अरोडा, वन्दना अरोडा, रजनी अरोडा, रानी अरोडा, प्रवीण लखनपाल, मीनू शर्मा, उर्मिल भगत, उर्मिला शर्मा, सुषमा, रहमत भाटिया, रूहानी भाटिया, अनिल मिश्रा, ओम प्रकाश मेहता, पूनम मेहता, मधुबाला, प्रीति खन्ना, सरिता मल्होत्रा, राघव मल्होत्रा, अशोक धीर, आरती मल्होत्रा, शिफाली मल्होत्रा, निखिल लखनपाल, रमा शर्मा, ईशा शर्मा, संजना शर्मा, सुदर्शन शर्मा, शिखा आर्य, गौरव आर्य व अन्य नगर निवासियों ने भाग लिया।

--**हर्ष लखनपाल महामंत्री**

वेदवाणी

भगवान् के गुप्तचरों से कुछ छिपा नहीं है

उत यो द्यामतिसर्पात् परस्तान्न स मुच्यातै वरुणस्य राज्ञः।
दिवः स्पशः प्र चरन्तीदमस्य सहस्राक्षा अति पश्यन्ति भूमिम्।।
-अथर्व० ४।१६।४

ऋषि-**ब्रह्मा**।। देवता-**वरुणः**।। छन्दः-**त्रिष्टुप्**।।

विनय-एक राष्ट्र (रियासत) के राजद्रोह का अपराधी किसी दूसरे राष्ट्र में भागकर उसके दण्ड से बच सकता है, परन्तु इस संसार के परिपूर्ण राजा-पापनिवारक सच्चे राजा-वरुण का अपराध करके, इस संसार के अटल नियमों का भङ्ग करके अर्थात् झूठ, द्रोह, हिंसा आदि करके, यदि कोई व्यक्ति चाहे कि वह कहीं भागकर इनके प्राप्तव्य प्रतिफलों से बच जाए तो यह असम्भव है। वरुण राजा के राज्य के बाहर मनुष्य कभी भी नहीं जा सकता। इस विस्तृत, दुर्गम, विशाल भूतल के किसी भी प्रदेश में जा छिपे, उससे हो सके तो चाहे मङ्गल, शुक्र आदि किसी अन्य लोक में भी चला जाए और यदि सम्भव हो तो चाहे वह इस सौर-मण्डल (दिवः) से भी परे कहीं जा पहुँचे, तो भी वह वरुण राजा के राज्य के पार नहीं जा सकता। वह चाहे कहीं चला जाए, अपना प्राप्तव्य दण्ड उसे अवश्य भोगना पड़ेगा, अपने किये हुए कर्म के बन्धन से वह कहीं भी जाकर नहीं छूट सकता। सांसारिक राजाओं (राजा कहलाने वालों) के गुप्तचर तो हमारे-जैसे अज्ञानी मनुष्य ही होते हैं, उन्हें बहुत धोखे दिये जा सकते हैं और वे असंख्यों भ्रमों के भाजन होते हैं, परन्तु उस वरुण राजा के दिव्य गुप्तचरों से मनुष्य कभी नहीं बच सकता। वे सब कुछ जान लेने में समर्थ होते हैं। वे इस ब्रह्माण्ड-भर में सर्वत्र व्यापक हैं। वे उस स्वयं प्रकाश वरुणदेवरूपी सूर्य की अनन्त किरणें बनकर सब ब्रह्माण्ड में फैले हुए हैं। वे उसकी ज्ञानशक्तियों के रूप में हैं, अतः हम मनुष्य जब किन्हीं ईश्वरीय नियमों का उल्लंघन करते हैं (शरीर से, वाणी से, या मन के मनन से कोई भी अनिष्ट आचरण करते हैं) तो उसी क्षण, उसी स्थान पर ये दिव्य वरुण-दूत इन्हें जान लेते हैं, बल्कि हमें अपने अदृश्य पाशों से तत्काल बाँध भी लेते हैं, परन्तु हमें कुछ ज्ञात नहीं होता। वरुण के 'स्पशों' (चरों) का यह कमाल देखो! यह परम गुप्तचरता देखो! वे हज़ारों आँखों वाले, असंख्यों प्रकार से देखने वाले 'स्पश', देश-काल आदि के सब व्यवधानों का अतिक्रमण करके सब ठीक-ठीक देखते हुए ब्रह्माण्ड-भर में विचर रहे हैं।

स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की तरफ से मुद्रक, प्रकाशक, सम्पादक प्रेम भारद्वाज द्वारा गायत्री प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड़ जालन्धर पंजाब से मुद्रित एवं गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से प्रकाशित।
सम्पादक-प्रेम भारद्वाज
पीआरबी एक्ट के तहत प्रकाशित सामग्री के चयन हेतु उत्तरदायी किसी विवाद का न्यायिक क्षेत्र जालन्धर होगा। आर एन आई संख्या 26281/74 **E-mail: apspunjab2010@gmail.com, www.aryapratinidhisabha.org**